Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities, Vol 1 pp. 47-53, 2006
DOI: 10.51220/hjssh.v1i1.9

गढ़वाली शौर्य गाथाओं में रसाभिव्यंजना

लक्ष्मी जुगरान
हिन्दी विभाग, राठ महाविद्यालय पैठानी, पौड़ी, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

भारतवर्ष के अधिकांश प्रान्तों की भाषा में लोकसाहित्य रचा गया है। लोक शब्द की परिधि में उस विशिष्ट जन समूह को लिया जा सकता है जो प्राचीन काल में परम्परा और रीति-रिवाजों के प्रति आस्थावान होता है। इसके साथ जुड़ा साहित्य शब्द यह बोध कराता है कि उस विशिष्ट समाज या व्यक्ति की भाषा गत अभिव्यक्ति ही साहित्य है और यह साहित्य वहाँ के जन जीवन में कथाओं के रूप में, गीतों के रूप में, नाट्य रूप में, मुहावरों, पहेलियों, नृत्य एवं वीरगाथा काव्य के रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। इस प्रकार लोक साहित्य शब्द में क्षेत्रीयता का प्रभाव और रंग प्रगाढ़ होता है। भारतवर्ष में अनेक प्रान्तों की संस्कृति को अभिव्यक्त करता हुआ लोक साहित्य लिखा गया जैसे राजस्थानी , मैथली, अवधि, मराठी, गुजराती, भोजपुरी, बंगला आदि। लोक साहित्य की पवरिभाषा देते हुए डा0 कृष्णदेव उपाध्याय ने कहा है - "सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहज अवस्था में स्थित जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में मिलती है। उसे लोकसाहित्य कहते है इस प्रकार लोकसाहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता के द्वारा जनता के लिए लिखा गया हो[1]।

एक आलोचक का कहना है कि किसी भी प्रदेश की संस्कृति का जीता जागता चित्र उसके लोकसाहित्य में प्रतिबिम्बित होता है समाज के विकास की सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखा सामाजिक बोध की एक अवस्था जन-जन की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद् आवेश, शौर्य, पराक्रम, राग-वैराग्य, मनन-चिन्तन सभी की सजीव अभिव्यक्ति लोकसाहित्य के माध्यम से होती है।[2]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि - "लोकसाहित्य पोथी ज्ञान से अलग रहने वाने लोकमानस की अभिव्यक्ति का साहित्य है।[3] लोकसाहित्य के अध्यवसायी विद्वनां ने लोकसाहित्य को लोकगीत, लोकगाथा लोककथा, लोकनाट्य, प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत रखा है। लोकसाहित्य के उक्त वर्गीकरण में गाथा शब्द गेयता का सूचक है अर्थात् जो गाया जाय वही गाथा है। अपने विशिष्ट भूगोल, भाषा, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, बोली, खान-पान, विश्वासों, मान्यताओं एवं धर्मगत भिन्नताओं के कारण भारतवर्ष के नक्शे में गढ़वाल हिमालय अपनी विशिष्ट पहचान बनाये हुए है। सॅम्पूर्ण विश्व में भारत देश की पहचान के दो प्रमुख घटक हैं- हिमालय तथा गंगा यमुना का उद्गम स्थान और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि भारतवर्ष के अभिन्न भू भाग गढ़वाल जो अब कुमायुं और गढ़वाल को मिलाकर पृथक उत्तरांचल राज्य, बन चुका है, में गंगा और हिमालय का भव्य स्वरूप स्थित है जो सम्पूर्ण भारतवर्ष की विरासत है, यहाँ का भूगोल जटिल होते हुए भी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र

©SHARAD

बिन्दु है। विश्व प्रसिद्ध चोटियां इसी भू भाग मे स्थित हैं। विश्व के प्रमुख तीर्थ स्थल बद्री - केदार इसी भू भाग में हैं। यहां का निवासी सरल और सहज हृदय वाला है। यहाँ की बोली, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से मध्य पहाड़ी के अन्तर्गत गढ़वाली नाम से जानी जाती है, इस प्रकार गढ़वाल हिमालय का भौगोलिक एवं प्राकृतिक विस्तार अत्यधिक है।

हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार सेठ गोविन्ददास ने लिखा हैं'' मैंने पृथ्वी की परिक्रमा की है परन्तु संसार में सर्वत्र घूमकर भी मुझे इतना आध्यात्मिक सुख नहीं मिला जो हिमालय की इस उत्तराखण्ड यात्रा से प्राप्त हुआ। हिमालय की यह नैसर्गिक सुषमा सचमुच अनुपम व अद्वितीय है।[4]

गढ़वाल हिमालय कभी बावन गढ़ों में विभक्त था। ''गढ़ों के आधिक्य होने के कारण गढ़ शब्द में वाला प्रत्यय लगाने से गढ़वाल नाम सन् 1515 ई0 के लगभग पड़ा। पंडित हरिकृष्ण रतूडी ने गढ़वाल के इतिहास में बावन ठाकुरी गंढ़ों का उल्लेख किया है। इन गढ़ों पर विभिन्न जाति के ठाकुरी राजाओं का शासन था।[5]

गढ़वाल का इतिहास गवाह है कि हिन्दी साहित्य के आदि कालीन रासो काव्य की ही भांति कभी गढ़वाल की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति युद्धों से प्रभावित थी। गढ़ों के राजाओं की रक्षा हेतु यहां के भड़ों (वीर योद्धा) ने समय-समय पर अपनी वीरता का प्रदर्शन किया, इतिहास प्रसिद्ध इन भड़ों के नाम हैं लोदी रिखोला, पन्थ्या काला, तीलू रौतेली, कफ्फु-चौहान, लछमू कठैत, कालू भंडारी, सूरज कुवंर, जीतू बग्डवाण आदि। ये कोई काल्पनिक चरित्र नहीं बल्कि जीते जागते चरित्र हैं जिन्होंने सदियों पूर्व गढ़वाल में अपने शौर्य एवं उत्साह का अपूर्व प्रदर्शन किया और कालान्तर में गढ़वाल की पेशेवर जातियों जैसे बादी, औजी, हुडकियों आदि के द्वारा इनकी गाथाएं यहां के लोकसाहित्य का अभिन्न अंग बनकर पंवाड़ों के रूप में प्रसिद्ध हैं पंवाड़ा शब्द थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ब्रज, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, बुंदेली, भोजपुरी आदि सभी जनपदों में प्रायः वीरगाथाओं के लिए प्रयुक्त होता आया है। डॉ0 सत्येन्द्र ने पमारा अथवा पंवार के शाब्दिक रूप के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि 'पवारे अथवा पंवाड़े प्रारम्भ में पंवार क्षत्रियों की वीरगाथाएं रही होगीं।[6]

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में रस सिद्धान्त का विशिष्ट महत्त्व है। यह रस अथवा आनन्द लोकसाहितय की शौर्य गाथाओं से पल्लवित होकर जनमानस को किस प्रकार आनन्द की अनुभुति करता है यह विवेचन का विषय है। स्पष्ट है कि पंवाड़े वीरता मूलक भावों की ही अभिव्यक्ति है इन शौर्य गाथाओं का गंभीरतापूर्वक विश्लेषण करने के उपरान्त यह भी देखा गया है कि अदिकालीन परिस्थितियों के ही समान इनमें वीरता के साथ-साथ श्रृगांर, भय, अद्भुत, वात्सल्य आदि अन्य रसों की भी सार्थक अभिव्यंजना है। यहां के अधिकांश चित्रण अतिशयोक्ति मूलक हैं। यहां भी युद्धों का कारण या तो राज्य सीमा का विस्तार है या सुन्दर स्त्री की प्राप्ति। इसलिए दो भावों रति एवं उत्साह

की प्रकर्षता यहाँ पर भी बनी हुई है।

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में निर्धारित नवरसों की अभिव्यंजना के अन्तर्गत हम इन पंवाड़ों में स्थाई भावों के नवरूप को देखते है। गायन शैली में रचे गये इन पंवाड़ों में नवरसों की अभिव्यक्ति निम्नलिखित है जो भाषाई प्रभाव के कारण गढ़वाली जनमानस को रसानुभुति के चरम तक ले लाने में समर्थ है।

वीर रस का स्थाई भाव उत्साह है भारतीय रस सिद्धान्त के अनुसार जब आरश्रय के मन में आलम्बन को देखकर उत्साह, स्थाई भाव, विभाव, अनुभाव संचारी से पुष्ट होकर रस दशा को प्राप्त होता तो वीर रस की निष्पत्ति होती है, गढ़वाली पंवाड़ों में तीलू रौतेली नामक वीरागंना गढ़वाल की लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध है। गढ़वाल की राजनैतिक परिस्थितियों एवं युद्ध की दुन्दुभियों के बीच अंगड़ाई लेती हुई उसकी वीरता ने कत्यूरी आक्रमणकारियों के खिलाफ अपनी धाक जमाई यद्यपि युद्ध करते हुए वह शत्रुओं द्वारा धोखे से मारी गई, उसका पंवाड़ा आज भी पर्वतीय जनमानस में गुंजित होता हुआ वीर रस के भावों का प्रदाता है।

"उन्याल नेगी डंगवाल जेठा, अस्वाल गोली सजवाण बांका
खूंटी बंगारी जस्तूड़ा बिष्ट, ढौडियाल, पोखरियाल तथा ध्याणी
बौड़ाई जोशी, सुरमा भदूला, सुन्दयालु की सुन्दर वीर सेना
तिलोत्मा देखिक वीर सेना संचालिका योंकि बणै स्वयं वा
बणैक सन्नद्व बणे रणार्थ, तलवार बांधी कमरी कसीक
पौंछी गये जुद्व की लालसा से, तिलोत्तमा देवकि और बेलू।[7]

यह पवाड़ा तत्कालीन समाजिक परिस्थितियों में जातीय शौर्य के उत्कर्ष के बीच तीलू की वीरता को रेखांकित कर रहा है। जिससे ध्वनित होता है उसने युद्ध का अपूर्व कुशलता से संचालन किया।

"कत्यूरी सेना वख पूर्व से ही डटी छयी युद्ध की करी तैयारी।
तीलून जैकी वख वीरता से, लड़े घमासान बड़ी लड़ाई।
विणास वैसी जन को करीक तै, विन्द्वा कत्यूरा को पछाड़िक तैं।
कत्यूरी सेना वख से भगाई, विजय पताका अपणी उड़ाई।"[8]

उक्त के पंवाड़े में कत्यूरियों के कब्जे में पड़े हुए खैरागढ़ के किले को जीतने के बाद तीलू के उत्साह को अभिव्यक्त किया गया है। गढ़वाल की उपत्यकाओं में इन असंख्य वीरों की वीरता की अनुगूँज आज भी पंवाड़ा के रूप में सुनी जा सकती है। लोदी रिखोला, कालू, भंडारी, गढुसुम्याल, पन्थ्या काला, कफ्फू चौहान, रणू रौत आदि वीर हैं जिस पर यहां का पर्वतीय मानस गर्व करता है।

जहां वीर रस का स्थाई भाव उत्साह है तो श्रृंगार रस का स्थाई भाव रति है जिसमें कि कामाधिक्य का भाव प्रबल होता है। गढ़वाली शौर्य गाथाओं में नायक-नायिका, प्रेमी-प्रेमिका, जीजा-साली के श्रृंगारिक हाव-भावों को प्रदर्शित करने वाले अनेक चित्र मिलते हैं। यह चित्र कुछ-2 आदिकालीन वीर गाथा काव्यों में सुन्दर राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नायक के मन में उठे काम भाव के आनुभूतिक चित्रण की ही याद दिलाते है, नायिका के रूप सौन्दर्य के लिए प्रयुक्त अधिकांश उपमान यद्यपि आंचलिकता का बोध कराते हैं। परन्तु इन उपमानों के पीछे आदिकालीन एवं सूफी प्रेमगाथाओं का सौन्दर्य बोध भी दिखाई देता है। सुरजू कुंवर को स्वप्न में कमल के फूल के समान राजकुमारी जोत्रमाला दिखाई दी। उसकी स्वच्छ शैय्या पर चमकदार झालर थी। सूर्य के समान चमकने वाला उसका हृदय था, चन्द्रमा जैसी उसकी पीठ थी, पर्वत श्रेणी और पहाड़ के वनों की सर्पणी की तरह उसकी वेणी थी, कुम्हार के घड़े के गले के समान जिसकी कटि थी, गंगा की फाट (धारा) की तरह उसकी सफेद मॉग थी, नासिक तलवार की धार के समान थी, दंत जाई (एक पहाड़ी फूल) के समान थे, होंठ दाणिम से फूल लाल थे ऐसे अप्रतिम सौन्दर्य पर सुरज मुग्ध हो गया।

सुपीना मा देख राणी जोत माला

देख्याले सुरजू तिन राणी को बंगला

सुतरी पलंग जै को नेलू झमकार

हिया च सुरीज जैंकी पीठी चंदरमा

कमरी दिखेंद जैकी कुमाली सी ठांया

सिदोंली दिखेंद जैंकी धौली जैसो फाट

नाकुणी दिखेंद जैंकी खड़क सी धार

ओठणी दिखेंद जैंकी दालिमा सी फूल

दांतुणी दिखेंद जैकी जाई जैसी कली।[9]

इतना ही नहीं श्रृंगार के वियोग भावों में नायक या नायिका को अत्यन्त व्याकुल होते, तड़पते

दिखाया गया है। वियोग के आलाप को गढ़वाली शब्द कोष में ''कारणा'' नाम दिया गया है। शृंगार का स्थाई भाव रति है तो इसके ठीक विपरीत रौद्र का स्थाई भाव क्रोध है।

शौर्य गाथाओं में क्रोध की अभिव्यंजना स्वाभाविक है। वीर रस के जहां शौर्य आनन्द के भाव से जुड़ा होता है, रौद्र में वह क्रोध, उग्रता और प्रतिशोध से जुड़ा होता है। व्यक्तिगत भाव अधिक होता है। गढ़वाली शौर्य गाथाओं में गढ़ू सुम्याल, रणु रौत आदि के पंवाड़ों में अनेक स्थानों पर व्यक्तिगत द्वेष के अन्तर्गत क्रोध की अभिव्यंजना के रूप में आश्रय की आँखों में लहू का तैरना, होंठो का फड़फड़ाना, भुजाओं का फड़कना और छाती के बालों का उठ जाना दिखाया गया है।

गढ़ू माल चढ़े छेतरी को रोष

तैकी छाती का बाल बवरैन

ओंठ बबलैन वैका, भुजा फफड़ैन

आख्यों मां वैका लोई सरे।[10]

जहां रौद्र का स्थाई भाव क्रोध है, वहाँ करण का स्थाई भाव शोक है। इन शौर्य गाथाओं में अपने इष्ट मित्र, प्रियजन और सम्बन्धी के विद्रोह या मृत्यु के ऐसे चित्रण हैं कि शोक का भाव करूण रस की अभिव्यंजना में सहायक है। सरजू कुंवर, भानू मौंपला आदि के पवाड़ों में मृत परिवार के दृश्य पारिवारियों की स्मृति आदि के कारुणिक चित्र हैं। कालू भण्डारी के पवाड़े में उसकी मृत्यु पर रानी ध्यानमाला का रुदन हृदय विदारक है।

मारी दिनै वैन कालू भण्डारी धोखा मा

रोये वराये तव राणी ध्यान माला

'भटके जनी ऊखड़ सी माछी

मै कु तैं पायूँ सोहाग हरचे।

जहां करूण का स्थाई भाव शोक हैं। वहीं दूसरी ओर अद्‌भुत का स्थाई भाव आश्चर्य हैं, गढ़वाल की शौर्य गाथाओं मे गढ़वाली समाज की पृष्ठभूमि में अति प्राकृतिक चित्रणों के परिणाम स्वरूप विस्मय के भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

गढ़वाल में सिद्व और नाथों का प्रभाव प्रचीन काल से ही रहा हैं, अतः अपने उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए नायक के द्वारा यक्षणी विधा तथा सिद्व और नाथों की चमत्कारिक कलाओं का सहारा लेना यहां आम बात है। नायक का बोगसाड़ी (गढ़वाल में प्रचलित तंत्र-मंत्रों के माध्यम से मनुष्य का

हिंसक पशु बन जाना) विद्या के माध्यम से प्रकट-अप्रकट हो जाना क्षण भर में ही आकाश में उड़ जाना आदि ऐसे वर्णन हैं जिनको गेय रूप में सुनकर जनमानस विस्मयाभि-भूत हो उठता है।[12]

जहाँ अद्‌भुत का स्थाई भाव विस्मय या आश्चर्य है वहां वात्सल्य का स्थाई भाव अपत्य स्नेह है, जो बालक के प्रति एक मां के हृदय में उठा हुआ एक ममत्व का भाव है। इन शौर्यगाथाओं में पुत्र के प्रति मां का ममत्व उन-उन स्थानों पर देखने में आया है जहां पुत्र का हठ दुर्गम स्थानों की यात्रा के लिए बना हुआ है। सुरजू कुंवर जोत्रमाला की रट लगाये हुए तातालूहागढ़ जाने के लिए अडिग है किन्तु मॉ का ममत्व मचल उठता है कि हे बेटा जो भी भोटन्त प्रवेश गया वह जोत्रमाला के चंगुल से बचकर वापस नहीं लौटा। तू तो मेरा इकलौता पुत्र है तेरे बिना मैं जीवित नहीं रह सकती।

तू छई कुंवर मेरो इकलो यकन्तों
निल्हौणो सुरजू तिन जोतरा को भामों
नि जाणों सुरजू बाला ताता लूहागढ़।[13]

भय की प्रतीति कराने वाला स्थाई भाव इन पंवाड़ों में रसाभिव्यंजना में पूर्ण सहायक है, वीर का प्रतिपक्षी शत्रु भय से पीड़ित दिखाया गया है। कई स्थानों पर दुर्गम एवं जटिल परिस्थितियों के बिम्बों में भय की उद्‌भावना भयानक रस की प्रतीति कराती चली है। सुरजू कुंवर की शौर्यगाथा में सुरजू गुरु गोरखनाथ के पास जाता है। गोरखनाथ का स्वरूप अत्यन्त डरावना और भयावह है।

नौ दिन नौ राति रैगे गोरख का पास
धूनीं लगौंद चला आसण बिछौंद
गड़याले गोरख तिन हाथ ताल छुरी
ताल छुरी गाड़ू तैकि मूंड्याले।[14]

जहां भयानक रस का स्थाई भाव भय है वहीं शान्त रस का स्थाई भाव शम इसे निर्वेद भी कहा गया है। हिंण्डवांणी कोट का भानू भौंपेला अपने पारिवारिकों की मृत्यु पर वैराग्य से उद्वेलित हो राजसी वस्त्रों को उतार, राजपाठ त्याग निर्विकार भाव से घूमने लगता है। उसके जीवन में नश्वरता ओर जीवन की क्षणभंगुरता के प्रश्न कौंधने लगते हैं। ऐसे ही स्थानों पर शान्त रस की निष्पत्ति हुई है।

बत्तीस कुटम को वैन, एकू भारो लगाये
चिता बणाई वैन जलाई दिन्या
अपणा ऑखून वैन, अपणी जिकुड़ी
सल मा जगदीं देखे फूकेन्दी।[15]

निष्कर्षतः कहा जाता है कि भारतीय काव्यशास्त्र के रस सिद्धान्त की व्याख्या के सन्दर्भ में यदि हम गढ़वाली शौर्यगाथाओं में आनन्द या रस तत्व की गवेषणा करें तो यह कहना अतिश्योक्ति नहीं कि इन गाथाओं में मन को तरंगायित करने की अपूर्व क्षमता विद्यमान है।

सन्दर्भ :-

1- डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका, पृ. 40
2- डॉ सन्तराम अनिल, कन्नौजी लोकसाहित्य, पृ. 1
3- डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, जनपद लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ. 65
4- डॉ0 शिवानन्द नौटियाल, गढवाल के लोकनृत्य गीत, पृ. 3
5- डॉ0 शिवानन्द नौटियाल, वही, पृ. 7
6- डॉ0 गोविन्द चातक, भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ, मध्य हिमालय, पृ. 268
7- डॉ0 डी0 आर0 पुरोहित, गढ़वाल की लोककला एवं उसके कलाकार, पृ. 54
8- डॉ0 डी0 आर0 पुरोहित, वही, पृ. 54
9- हरिदत्त भट्ट शैलेश, गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, पृ. 253
10- हरिदत्त भट्ट शैलेश, वही, पृ. 226
11- हरिदत्त भट्ट शैलेश, वही, पृ. 244
12- हरिदत्त भट्ट शैलेश, वही, पृ. 237-238
13- डॉ0 डी0 आर0 पुरोहित, उपरोक्त, पृ. 35
14- हरिदत्त भट्ट शैलेश, वही, पृ. 257
15- हरिदत्त भट्ट शैलेश, वही, पृ. 207